ISSN - 2229-3620
APPROVED UGC CARE

SHODH SANCHAR BULLETIN
Vol. 10, Issue 38 April-June 2020
Page Nos. 124-127

AN INTERNATIONAL BILINGUAL PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

जायसी के लौकिक सरोकार : एक पुनर्पाठ

डॉ0 अनिल राय*

शोध सारांश

जायसी सूफी काव्यधारा के सर्वश्रेष्ठ कवि के रूप में प्रसिद्ध हैं। सूफी कविता इहलोक के बहाने परलोक का आख्यान कहने के उद्देश्य से अस्तित्व में आयी थी। जायसी समेत लगभग सभी सूफी कवियों ने प्रेमाख्यान के समूचे वर्णन में लोकजीवन का आँचल क्षणमात्र के लिए भी नहीं छोड़ा है। जायसी के समाज–चिंतन में कबीर जैसी उग्रता और आक्रामकता का ताप नहीं है। इससे अलग उनमें प्रेमतत्त्व को समाज और विशेष रूप से गृहस्थ जीवन की धुरी पर प्रतिष्ठित करने की एक खास तरह की बेचैनी विद्यमान है। जायसी के प्रेमाख्यान की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनके यहाँ प्रेम का संसार भारतीय लोकजीवन के सूक्ष्म धागों से बना हुआ है। उनके प्रेमाख्यान में अवध की लोकसंस्कृति, ठेठ गँवई भाषा, तीज–त्योहार, स्त्री–जीवन, प्रकृति–पर्यावरण आदि के असंख्य जीवंत चित्र विद्यमान हैं। यही कारण है कि जायसी का 'पद्मावत' परलोक से अधिक इहलोक का महाख्यान बन गया है। ठेठ अवधी भाषा और ग्रामीण लोकसंस्कृति के प्रति जायसी का असाधारण मोह उन्हें लोकसंवेदना के एक महान कवि के रूप में प्रतिष्ठित करता है।

Keywords : सूफी–दर्शन, लोकजीवन, गार्हस्थिक प्रेम, वियोग–वर्णन, बारहमासा, अलौकिकता, स्त्री–जीवन।

जायसी निर्गुण भक्तिधारा में कबीर के समान ही विशिष्ट सामाजिक दृष्टि लेकर अवतरित हुए थे। भारत में सूफी विचारधारा के आगमन के साथ उदारपंथी दृष्टिसंपन्न साहित्य की सर्जना आरंभ हुई। सूफी–दर्शन को लेकर विभिन्न इतिहासकारों ने जो मत प्रस्तुत किये हैं, उनका निचोड़ यह है कि इस्लाम का उदार पंथ ही मोटे तौर पर सूफी विचारधारा है। भारत में सूफी संप्रदाय के आगमन के पश्चात् सांस्कृतिक चर्चा के नये आयामों को विस्तार मिला। विद्वानों के मध्य इस्लामी एकेश्वरवाद और भारतीय अद्वैतवाद पर नये सिरे से संवाद होने लगा। जायसी के काव्य में मध्यकाल का भारतीय लोकजीवन अपनी संपूर्णता में स्पंदित हुआ है। अतः उन्हें केवल सूफी कवि अथवा प्रेममात्र का कवि कहना उनकी लोकधर्मी व्यापकता को सीमित करने का प्रयास होगा। वे स्वभावतः लोकजीवन की समग्रता के कवि हैं। हिंदी साहित्य में जायसी का उदय जिस दौर में हुआ वह इस्लाम के भारत में जड़ें जमाने का दौर था। एक लंबी उथल–पुथल के पश्चात् दोनों संस्कृतियों में अंततः जो थिराने का भाव आया उसे आगे बढ़ाने में सूफी कवियों की भूमिका सराहनीय रही। वे समाज को यह संदेश देने में काफी हद तक सफल भी रहे कि मनुष्य का मजहब चाहे कोई भी हो, अंततः वह एक ही ईश्वर तक उसे ले जाता है और उस परम सत्य को प्राप्त करने का एकमात्र साधन प्रेम है।

जायसी में कबीर वाली आक्रामकता नहीं दिखायी पड़ती। उनका मार्ग सूफियों द्वारा बहुत सोच–विचार कर अपनाया गया एक ऐसा मार्ग था जो उन्हें लक्ष्य तक सुगमता से ले जाने वाला था। आचार्य रामचंद्र शुक्ल सामाजिक धरातल पर जायसी के साहित्यक अवदान को चिन्हित करते हुए लिखते हैं–''कबीर ने अपनी झाड़–फटकार के द्वारा हिंदुओं और मुसलमानों के कट्टरपन को दूर करने का जो प्रयास किया वह अधिकतर चिढ़ाने वाला सिद्ध हुआ, हृदय को स्पर्श करने वाला नहीं।....हिंदू हृदय और मुसलमान हृदय आमने–सामने करके अजनबीपन मिटाने वालों में इन्हीं का नाम लेना पड़ेगा।... कबीर ने केवल भिन्न प्रतीत होती हुई परोक्ष सत्ता की एकता का आभास दिया था। प्रत्यक्ष जीवन की एकता का दृश्य सामने रखने की आवश्यकता बनी हुई थी, यह जायसी द्वारा पूरी हुई।''[1] प्रसिद्ध आलोचक विजयदेव नारायण साही जायसी को कबीर की अपेक्षा अधिक समर्थ कवि मानते हैं। उनकी दृष्टि में कबीर मूल रूप से संत हैं बाद में कवि, जबकि जायसी मूलतः कवि ही हैं। जाहिर है शाही के प्रिय कवि जायसी हैं। जायसी उनके लिए सूफीकाव्य–परंपरा में विशिष्ट इसलिए हो जाते हैं क्योंकि वे लोक–अनुभव से सर्वाधिक समृद्ध कवि हैं। 'पद्मावत' की रचना उन्होंने एक प्रेमाख्यानक काव्य के रूप में की है। जायसी ने इसमें एक लौकिक प्रेमकथा के माध्यम से अलौकिकता परोसने की भरसक कोशिश की है। वे जिस प्रेम का आख्यान पद्मावत में प्रस्तुत करते हैं वह भले ही अलौकिक अभिव्यक्ति के उद्देश्य को लेकर चला हो किंतु लौकिकता को वह

*एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी–विभाग, श्यामलाल कॉलेज सांध्य, दिल्ली विश्वविद्यालय

कभी छोड़ नहीं पाता। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यहाँ वर्णित मानवीय प्रेम का पूरा ताना–बाना लोक संवेदना के धागों से तैयार हुआ है। 'पद्मावत' की प्रेमकथा के केंद्र में मनुष्य है जिसके एक ओर सामंती परिवेश है तो दूसरी ओर एक सजग कवि का लोकानुराग। पद्मावत की अंतिम पंक्तियों ने विद्वानों के मध्य इसकी अन्योक्ति को लेकर एक अच्छा खासा विवाद उत्पन्न कर दिया था–'तन चितउर मन राजा कीन्हा। हिय सिंहल बुद्धि पदमिनि चीन्हा।।' अर्थात् तन चित्तौड़ है, मन राजा रत्नसेन है, हृदय सिंहलद्वीप है, बुद्धि पद्मावती है, हीरामन तोता गुरु है, नागमती सांसारिकता है, राघव शैतान है तथा अलाउद्दीन माया है। इस प्रकार जायसी के 'पद्मावत' में लोक और परलोक दोनों समानांतर चलते हैं। पद्मावत की कथा को पूरी तरह प्रतीकात्मक मान लेने से भी अनेक प्रकार की समस्याएँ खड़ी हो जाती हैं, जिन्हें देखते हुए ही आचार्य शुक्ल ने पद्मावत को अन्योक्ति की जगह समासोक्ति मानने का आग्रह किया है। अलौकिकता के साथ–साथ इहलौकिक धरातल पर भी चलने वाली इस कथा का भारतीय जनमानस पर गहरा प्रभाव पड़ा। 'इश्कहकीकी' को यदि यहाँ नजरअंदाज कर दिया जाय तो भी इसमें चित्रित मानवीय प्रेम इसकी महत्ता को तनिक भी धूमिल नहीं पड़ने देता। प्रेम के गहन–गंभीर रूप को जायसी इस प्रकार समझाते हैं–

प्रीति बेलि जिनि अरुझे कोई। अरुझे मुए न छूटे सोई।।
प्रीति बेलि ऐसे तनु डाढ़ा। पहुलत सुख बाढ़त दुःख बाढ़ा।।
प्रीति अकेलि बेलि चढ़ि छावा। दोसरि बेलि न पसरे पावा।।[2]

जिस प्रेमतत्त्व को 'पद्मावत' में स्थान मिला है वह भारतीय दांपत्य जीवन के साथ पूरी स्वाभाविकता से अपना तादात्म्य स्थापित कर लेता है। दांपत्य जीवन के शाश्वत प्रेम की परिव्याप्ति जायसी को श्रृंगारी कवियों से अलग करते हुए गार्हस्थिक प्रेम के श्रेष्ठ कवि के रूप में प्रतिष्ठित करती है। इस गार्हस्थिक प्रेम में भोग और त्याग का अद्भुत संतुलन है। 'पद्मावत' में नागमती का वियोग गार्हस्थिक प्रेम की गरिमा का सर्वाधिक सशक्त पक्ष है। नागमती के लंबे विरह की परिणति सुखान्तक तब हो जाती है जब रत्नसेन पुनः चित्तौड़ लौटकर उससे मिलता है। स्पष्ट है कि यहाँ जायसी ने मानिनी नागमती के मान की पूरी रक्षा की है और रत्नसेन को उसके समक्ष प्रस्तुत कर उसके मान को तुड़वाया भी है। जायसी की विलक्षणता यह है कि मुसलमान होते हुए भी वे भारतीय स्त्री के पातिव्रत्य का महिमा–मंडन करना नहीं भूले हैं। उनकी दृष्टि में प्रेम में ही वह क्षमता है जो स्त्री को सतीत्व हेतु प्रेरित करता है–

परबत समुंद ससि मेघ रवि ,सहि न सकहिं वह आगि।
मुहम्मद सती सराहिए, जरै जो अस पिय लागि।[3]

'पद्मावत' में जायसी ने नागमती के वियोग–वर्णन के माध्यम से परंपरा से चले आ रहे बारहमासे को एक नया स्वरूप प्रदान किया है। ग्रामीण लोकजीवन के प्रति जायसी की सूक्ष्म निरीक्षण–क्षमता उन्हें लोकजीवन के एक अनूठे कवि के रूप में प्रतिष्ठित करती है। वे अपनी सूक्ष्म दृष्टि से न केवल ग्रामीण जीवन का कोना–कोना झाँक आते हैं, अपितु संवेदनशील हृदय को परत–दर–परत खोल कर रख देने में भी वे सिद्धहस्त हैं। नागमती के वियोग–वर्णन का एक प्रसंग यहाँ प्रस्तुत है–

बरसहिं नैन चुवहिं घर मांहा। छप्पर छपर होइ रहि बिनु नाहा।।
को रे कहां ठाठ नव साजा। तुम्ह बिनु कंत न छाजनि छाजा।।[4]

जायसी ठेठ ग्रामीण जीवन के कवि हैं। ग्रामीण अनुभवों को बड़ी ही सहजता से व्यक्त करना उनकी प्रकृति भी है और क्षमता भी। सामंती परिवेश और राजा रानी आदि की संवेदना को व्यक्त करते समय वे लोक–संवेदना से कटते नहीं है। यही कारण है कि उनके द्वारा रचित रानी नागमती का विरह अति साधारण ग्रामीण गृहिणी का विरह बन गया है। आचार्य शुक्ल जायसी की इस विशेषता को रेखांकित करते हुए लिखते हैं –''अपनी भावुकता का बड़ा भारी परिचय जायसी ने इस बात में दिया है कि रानी नागमती विरह दशा में अपना रानीपन बिल्कुल भूल जाती हैं और अपने को केवल साधारण स्त्री के रूप में देखती हैं। इसी सामान्य स्वाभाविक वृत्ति के बल पर उनके विरह–वाक्य छोटे–बड़े सब के हृदय को समान रुप में संस्पर्श करते हैं।''[5] पद्मावत में शरीर का रूपक प्रस्तुत करते हुए वर्षाऋतु के आगमन पर गृहस्थ विरहिणी की जो चिंता जायसी द्वारा व्यक्त की गयी है उसकी स्वाभाविकता ने भी आचार्य शुक्ल को गहरे रूप में प्रभावित किया है। जिसके कारण उन्हें लिखना पड़ा है कि 'यह आशिक–माशूकों का निर्लज्ज प्रलाप नहीं है, यह हिंदू गृहिणी की विरह–वाणी है।'

अवध का लोकजीवन जिन मध्यकालीन कवियों के द्वारा सशक्त रूप में अंकित है उनमें जायसी और तुलसी के नाम अग्रगण्य हैं। जहाँ तुलसी के वर्णनों में उनका पांडित्य सर्वत्र दिखायी पड़ता है वहीं जायसी अवधी के ठेठ गँवई कवि हैं और अपनी इसी गँवई दृष्टि से उन्होंने पद्मावत के प्रेमाख्यान को रचा है। राजा और रानी की कथा उनके हाथों में पड़कर साधारण ग्रामीणों की कथा बन गयी है। इसका सबसे बड़ा कारण लोकजीवन की गहराइयों में उनकी गहरी पैठ है। अवध प्रदेश की प्रकृति और पर्यावरण अपनी समग्रता के साथ 'पद्मावत' में विद्यमान है। वहाँ की एक–एक वनस्पति, फल–फूल, जीव–जंतु, तीज–त्यौहार खेती–बारी सब कुछ बड़े विस्तार से पद्मावत में परिव्याप्त है। बारहमासा–वर्णन का तो कहना ही क्या। अवध की निरंतर परिवर्तित ऋतुएँ वहाँ के लोकजीवन को कैसे प्रभावित करती हैं इसका विषद हिसाब–किताब जायसी ने बारहमासा–वर्णन में प्रस्तुत किया है। समूचे विश्व–साहित्य में बारहमासा–वर्णन में जायसी का कोई सानी नहीं है। नारी समाज की व्यथा–करुणा को जितनी सफलता से जायसी ने अभिव्यक्ति दी है उतनी बहुत कम कवियों में मिलती है। उनके बारहमासे के

केंद्र में उनका लोक–अनुभव है जो जायसी को लोकजीवन के सर्वश्रेष्ठ कवियों की कतार में ला खड़ा करता है। डॉ. प्रेमशंकर के शब्दों में कहें तो ''बारहमासा निमित्त है परंपरा–पालन का, जिसके माध्यम से जायसी नारी के करुण पक्ष को प्रस्तुत करना चाहते हैं, पर यहाँ उल्लेखनीय है लोकतत्त्वों की उपस्थिति। बाल्मीकि का सूक्ष्म प्रकृति–निरीक्षण, कालिदास का श्रृंगार–भाव तथा तुलसी के नैतिक निष्कर्ष से जायसी अधिक मानवीय भूमि पर हैं। सामान्य नारी का पक्ष लेते हुए और इसे उन्होंने पूरी मानसिकता के साथ व्यक्त किया है।''[6]

सामाजिक यथार्थ के जिस प्रकार के चित्र कबीर और तुलसी के काव्य में अंकित हैं वैसे जायसी के यहाँ नहीं मिलते। इसके मूलभूत कारणों का विश्लेषण करते हुए डॉ. प्रेमशंकर कहते हैं –''जायसी में मध्यकाल उस प्रकार से अपने यथार्थ रूप में नहीं आ सका जिसके लिए कबीर का उल्लेख किया जाता है और तुलसीदास के कलिकाल का वर्णन भी। जायसी ने दूसरा रास्ता चुना, उन्होंने स्वयं को लोकजीवन से जोड़ा विशेषतया ग्राम समाज से। उसमें भी उनकी रुचि उस लोकसंस्कृति में अधिक है।...जायसी का संवेदन अपने आसपास के लोकजीवन में रमता है और वे वर्णनात्मकता से आगे निकलकर रागात्मक हो जाते हैं।''[7] 'पद्मावत' की कथा को त्रिकोणीय प्रेमकथा मानें अथवा प्रतीकात्मक, जायसी की दृष्टि में दांपत्य प्रेम सर्वोपरि है। उनका 'पद्मावत' जैसी रचना लिखने का उद्देश्य एक ऐसा प्रेमाख्यान प्रस्तुत करना था जिसके माध्यम से समाज में मानवीय प्रेम और उसके उच्चतर मूल्यों की स्थापना की जा सके। जायसी इस सत्य के प्रति भली–भांति सजग हैं कि परिवार ही भारतीय समाज और लोकजीवन का मूलाधार है। परिवार में भी विशेष रूप से नारी उनकी दृष्टि में सर्वोच्च आसन और सम्मान की अधिकारिणी है। यही कारण है कि जायसी की सहानुभूति क्षण भर के लिए भी उससे विमुख नहीं होती। 'पद्मावत' का 'मानसरोदक खंड' मध्यकालीन नारी की पराधीनता और बेबसी का प्रामाणिक दस्तावेज है। तुलसी के 'कत विधि सृजी नारि जग माहीं। पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं।' जैसी चिंता जायसी में कम नहीं है। मानसरोवर में स्नान करने पहुँची पद्मावती से उसकी सखियाँ जो बातें कहती हैं वे उस युग के नारी–समाज की परतंत्रता का गहन बोध कराती हैं। समाज में विवाह नामक संस्कार नारी पराधीनता का मूल स्रोत था–

ऐ रानी मन देखु बिचारी। एहि नैहर रहना दिन चारी।।
जो लहि अहै पिता कर राजू। खेलि लेहुँ जौ खेलन आजू।।
पुनि सासुर हम गौनब काली। कित हम कित एह सरवर पाली।।
कित आवन पुनि अपने हाथा। कित मिलि कै खेलब एक साथा।।
सासु ननद बोलिन्ह जिउ लेहीं। दारुन ससुर न आवै देहीं।।[8]

जायसी ने इन पंक्तियों में स्त्रियों के ससुराल का जैसा वर्णन किया है वह किसी कारावास से कम नहीं है। ससुराल का यातनापूर्ण जीवन रानी और दासी दोनों के लिए समान है। 'रत्नसेन–विदाई खंड' में पद्मावती के विदाई का दृश्य भी अत्यंत मार्मिक है। जायसी देख रहे थे कि स्त्री पति के अनुशासन में रहने व उसके संकेतों पर चलने के लिए बाध्य हैं–

कंत चलाई का करौं, आयसु जाइ न मेंटि।।
पुनि हम मिलहिं कि ना मिलहिं, लेहु सहेलिहुँ भेंटि।।[9]

विदाई के समय पद्मावती और उसकी सखियाँ बिलख रही हैं। वे स्वयं को पराया धन कहकर लाचार अनुभव करती हैं–

धनि रोअत सब रोवहिं सखीं। हम तुम्ह देखि आजु कहँ झखीं।।
तुम्ह ऐसी जहँ रहै न पाईं। पुनि हम काह जो आहिं पराई।।[10]

पद्मावती की साखियाँ उससे कहती हैं कि जब तुम्हारे जैसी रानी यहाँ का सुख नहीं ले सकी तो हमारे भाग्य में यह सुख कहाँ ? हम तो परायी हैं ही। जायसी इस प्रसंग में मध्यकालीन समाज की आर्थिक विपन्नता की ओर भी संकेत करना नहीं भूलते, जिसके कारण पिता को अपनी संतान तक का सौदा करना पड़ जाता था। यहाँ खास बात यह है कि उनकी सहानुभूति उस पिता के साथ नहीं है जो ऐसा करने को विवश है, बल्कि उस बेटी के साथ है जो जानवरों की तरह दूसरों के साथ बँधने के लिए बाध्य है–

आदि पिता जो अहा हमारा। ओह नहि यह दिन हिये विचारा।।
छोह न कीन बिछौहैं ओहू। गा हम बेचि लाग एक गोहूँ।।
मकु गोहूँ कर हिय बेहराना। पै सो पिता नहिं हिये छोहाना।।[11]

मध्यकालीन नारी–समाज सामंती बहुपत्नी–प्रथा की पीड़ा भी झेलने को अभिशप्त था। जायसी ने इसे भी पद्मावत में उद्घाटित करने का प्रयास किया है। नागमती के वियोग–वर्णन में प्रकृति और पशु–पक्षियों की भी बराबर की भागीदारी है। ग्रामीण प्रकृति नागमती की सहचरी है। यहाँ पेड़–पौधों, जीव–जंतु एवं विभिन्न पक्षियों के संवाद और प्रकृति का जैसा सूक्ष्म निरीक्षण मिलता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। जायसी सही अर्थों में लोकधर्मी साहित्यकार हैं। इसीलिए नागमती का वियोग राजमहल की चहारदीवारी का अतिक्रमण कर ग्रामांचल के खुले वातावरण को झंकृत कर देने में सफल है–

कुहुकि कुहुकि जस कोइलि रोई। रक्त आँसु घुँघुनी बन कोई।।
पै कर मुखी नैन तन राती। कौ सिराव बिरह दुःख ताती।।

————————————————————

ना पावस ओहि देस रे, ना हेमंत बसंत।
ना कोकिल न पपीहरा, केहि सुनि आवहिं कंत।।[12]

जहाँ 'पद्मावत' की नागमती मध्यकालीन भारतीय नारी का सच्चा प्रतिनिधित्व करती है वहीं पद्मावती का रूप–चित्रण करते समय जायसी साधारण देहवादी मनोवृति से ऊपर उठकर उसे ज्योतिस्वरूपा रूप में अभिव्यक्त करते हैं। इस प्रकार नारी–व्यक्तित्व के मुख्यतः दो पक्षों पर जायसी की पैनी दृष्टि पड़ी है। एक पद्मावती का दिव्य सौंदर्य और दूसरा भारतीय पतिव्रता

नारी की विरह–व्यथा। दोनों ही पक्षों के अंकन में लोकतत्त्वों की अनिवार्य उपस्थिति जायसी को एक बड़ा कवि बनाती है। 'पद्‌मावत' में स्त्रीत्व के धरातल पर दोनों ही प्रतिनिधि स्त्री–चरित्रों का भेद अंत में मिटता हुआ दिखायी पड़ता है–

नागमती पदमावति रानी। दुवौ महासत सती बखानी।।
दुवौ आइ चढ़ि खाटै बइठी। औ सिवलोक परा तिन्ह डीठी।।[13]

मध्यकालीन समाज विलासिता और अध्यात्म दोनों के अतिवादी छोरों के मध्य एक साथ फंसा हुआ था। साधारण गृहस्थ–जीवन और उसके प्रेम को समाज के केंद्र में स्थापित करने की आवश्यकता निरंतर बनी हुई थी। इस आवश्यकता–पूर्ति में जायसी जैसे सूफी कवियों की भूमिका स्तुत्य साबित हुई। ठेठ देसी भाषा और लोकजीवन से जुड़े कथ्य के ताने–बाने से जो साहित्य जायसी द्वारा सृजित हुआ वह उन्हें लोक–संवेदना के एक महान् कवि के रूप में स्थापित करता है। जायसी का सबसे बड़ा प्रदेय यह है कि उनके वर्णनों में कदम–कदम पर लोकतत्त्वों की भरमार है। इन्हीं तत्त्वों ने पद्‌मावत की प्रेमकथा को मानवीय धरातल पर आरंभ से अंत तक बाँधे रखा है। अवध की लोक–संस्कृति जायसी की साहित्यिक संवेदना को समृद्ध करती है। जिस अवधी भाषा को उन्होंने अभिव्यक्ति हेतु चुना उसमें ठेठ ग्रामीण जीवन स्पंदित है। ऐसा प्रतीत होता है कि सूफी–दर्शन की समूची आध्यात्मिकता जायसी के यहाँ आकर मानो ठहर गयी है और वह केवल मानवकेंद्रित होकर रह गयी है। उनका रचा हुआ संसार सही अर्थों में व्यापक प्रेम का मानवीय संसार है।

सन्दर्भ :–

1. रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2011, पृष्ठ–92।
2. संपादक माताप्रसाद गुप्त, पद्‌मावत, भारती–भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, 1963, पृष्ठ–217 ।
3. वही, पृष्ठ–302।
4. वही, पृष्ठ–303।
5. रामचंद्र शुक्ल–ग्रंथावली, मलिक मोहम्मद जायसी, वियोग पक्ष, हिंदीसमय.कॉम।
6. प्रेमशंकर, भक्तिकाव्य का समाजदर्शन, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2007, पृष्ठ–126।
7. वही, पृष्ठ–116।
8. संपादक माता प्रसाद गुप्त, पद्‌मावत, भारती–भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, 1963, पृष्ठ–52 ।
9. वही, पृष्ठ–323।
10. वही, पृष्ठ–324।
11. वही, पृष्ठ–307।
12. वही, पृष्ठ–531।

❐❐❐